इकाई 32 विज्ञान और तकनीकी

इकाई की रूपरेखा

32.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप :

- मुगल काल के दौरान विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में विकास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे; और
- तत्कालीन यूरोपीय विज्ञान और तकनीकी के प्रति भारतीयों की प्रतिक्रिया पर भी विचार किया जाएगा।

32.1 प्रस्तावना

ऐच्छिक पाठ्यक्रम (खंड 6, इकाई 22) में आप भारत में सल्तनत काल में विकसित तकनीकी की झलक प्राप्त कर चुके हैं। उस पाठ्यक्रम में बाहर से आए मुसलमानों द्वारा प्रस्तुत किए गए नये शिल्पों पर विशेष रूप से विचार किया गया था। प्रस्तुत इकाई में 16वीं-17वीं शताब्दी में यूरोपवासियों द्वारा लाई गई नयी तकनीकों, कृषि उत्पादन, फलों, आदि पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा। हम इस काल में विज्ञान की स्थिति पर भी विचार करेंगे।

32.2 विज्ञान

इस काल में भौतिकशास्त्र, रसायन, खगोलशास्त्र, औषधि, भूगोल तथा गणित आदि क्षेत्रों में कोई नयी वैज्ञानिक प्रगति नहीं हुई। परम्परागत ज्ञान की ही शिक्षा दी जाती रही, उस पर बहस होती रही तथा उसमें बिना कुछ नवीन परिवर्तन के भाष्य तैयार किए जाते रहे। इस क्षेत्र में भारतीय और यूनानी-अरबी वैज्ञानिक दृष्टिकोण का वर्चस्व था। भारत में मुसलमान विद्वानों पर लिखते हुए फ्रांसीसी यात्री करेरी कहता है :

"पुस्तकों के अभाव में वे वैज्ञानिक ज्ञान में विकास नहीं कर सके, उनकी जानकारी अरस्तु और एवीसीना के लेखन (अरबी में) तक की सीमित थी।"

परंतु हम इस बात से इंकार नहीं कर सकते हैं कि विवेच्य काल में कुछ योग्य वैज्ञानिक हुए। मीर फतउल्लाह शिराजी एक ऐसा ही प्रतिभाशाली वैज्ञानिक था। वह 1583 ई. में आगरा में अकबर के दरबार में शामिल हुआ (मृत्यु 1588 ई.)। उसके बारे में लिखते हुए अबुल फजल कहता है : "अगर सोचने का पुराना तरीका समाप्त हो गया होता तो वह ज्ञान का नया आधार विकसित कर सकता था और उसने जो कुछ भी खोया है उसका गम न करता।" उसकी मृत्यु पर शोक व्यक्त करते हुए अकबर ने कहा था "अगर वह फिरंगियों (यूरोपवासियों) के हाथ लग गया होता और वे उसके बदले हमारा पूरा खजाना भी मांगते तो मैं यह फायदेमंद सौदा खुशी-खुशी मंजूर कर लेता और फिर भी उस अनमोल रत्न की खरीद सस्ते में ही होती।" उसने यांत्रिकी संबंधी कुछ नई खोजें की थीं (देखिए भाग 32.5 और 32.i। vi)। अकबर के आदेश पर 1584 ई. में एक "सही" अर्थों में सौर कैलेंडर (जो **इलाही** के नाम से जाना जाता है) का विकास किया था। परंतु उसने भारत में उपलब्ध परम्परागत ज्ञान से अलग हटकर कोई नया वैज्ञानिक सिद्धांत या सूत्र प्रतिपादित नहीं किया था। भारतीय यूरोपीय ज्ञान से परिचित थे। अबुल फजल को यूरोपवासियों द्वारा अमेरिका की खोज की जानकारी थी। इस "नई दुनिया" को उसने फारसी में **"आलम-ए-नौ"** की संज्ञा दी। परंतु भारत में आमतौर पर इस प्रकार की शिक्षा भूगोल शिक्षण का हिस्सा नहीं था। गैलीलियो की खोज (टॉलमी के विश्व दृष्टि के विपरीत) थी कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, यह ज्ञान अभी तक भारतीय वैज्ञानिकों तक नहीं पहुंचा था। इसी प्रकार इस समय भारतीय न्यूटन के गतिशीलता संबंधी तीन सिद्धांतों और उसके गुरुत्वाकर्षण के नियम से परिचित नहीं थे। बर्नियर नामक एक फ्रांसीसी चिकित्सक सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत आया, उसने दावा किया कि वह मुगल कुलीन आगा दानिशमंद खां के संसर्ग में पांच छह वर्ष रहा था। उसने उसे हार्वे और पैक्वेट की "खून के परिसंचरण" संबंधी खोज के बारे में बताया था। बर्नियर के अनुसार भारतीयों का शरीर विज्ञान संबंधी ज्ञान बहुत कम था। हमारे **हकीमों** और वैद्यों ने हार्वे की खोज के प्रति कोई रुचि नहीं दिखाई।

32.3 कृषि तकनीकी

मुगल काल में हल, लोहे के फाल, सिंचाई के तरीकों, बोने, काटने, कूटने और फटकने की विधि में कोई आमूल परिवर्तन नहीं हुआ (विवरण के लिए ऐच्छिक पाठ्यक्रम-03, खंड 6, इकाई-22 पढ़िए)। बुआई के लिए बीज छिड़कने और नली द्वारा बीज बोने की विधि के अतिरिक्त खुरपी से गड्ढा खोदकर बीज डालने की प्रथा भी प्रचलित थी। यह विधि खासकर कपास की खेती के लिए उपयुक्त थी : खुरपी से गड्ढा खोदकर उसमें बीज डाल दिया जाता था और उसे मिट्टी से ढक दिया जाता था। अनाज को फसल से अलग करने के लिए बैलों का प्रयोग किया जाता था, साथ ही साथ डंडे से पीटकर भी अनाज को फसल से अलग किया जाता था।

इस काल के दौरान कुछ नयी फसलों, पौधों और फलों की जानकारी प्राप्त हुई। इनमें से कई यूरोपवासियों खासकर पुर्तगालियों, द्वारा लाए गए थे। मुगल कुलीन वर्ग ने अकबर के समय से ही भारत में मध्य एशियाई फलों को उगाना शुरू कर दिया था।

अमेरिका से आने वाली महत्वपूर्ण फसलों और फलों में तम्बाकू, अनन्नास, काजू और आलू प्रमुख हैं। तम्बाकू के आगमन से हुक्का पीने का प्रचलन हुआ। इसके अलावा, टमाटर, अमरूद और लाल मिर्च भी बाहर से लाए गए। अबुल फजल की **"आइने अकबरी"** में मक्का का उल्लेख नहीं है। संभवतः इसे भी यूरोपवासी लैटिन अमेरिका से लेकर आए थे।

आगरा के आसपास उपजाए जाने वाले कई प्रकार के खरबूज, तरबूज और अंगूर मध्य एशिया से लाए गए थे। अकबर के शासनकाल में कश्मीर में चैरी की खेती आरंभ हुई।

तम्बाकू का प्रयोग : हुक्का

बीज प्रजनन की सहायता से अच्छी कोटि के फल उपजाए जाते थे। दिल्ली सल्तनत के शासन काल में बागबानी में कलम-तकनीक का उपयोग होता था या नहीं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। पी.के. गोडे के अनुसार भारत में 1550 ई. के बाद कलम-पद्धति का आरंभ हुआ। फारस और मध्य एशिया में इस तकनीक की जानकारी थी परंतु गोवा में पुर्तगाली कलम पद्धति का उपयोग करके अच्छी कोटि का आम पैदा किया करते थे। भारत आने वाले यूरोपीय यात्रियों ने गोवा में पैदा होने वाले अलफाँसो, ऑवर लेडी, जोआनी परेरा, आदि आमों की खूब प्रशंसा की है। आज भी अलफासो भारत में एक उच्चकोटि का आम है।

सभी मुगल सम्राटों में अकेले शाहजहाँ को दो नहरें (**नहर फैज** और **शाह नहर**) खुदवाने का श्रेय प्राप्त था।

सिंचाई के अन्य साधनों के विषय में आप पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-03 के खंड 6 की इकाई 22 में अध्ययन कर चुके हैं।

बोध प्रश्न 1

1) खुरपी द्वारा बुआई की प्रथा क्या थी? इसके प्रयोग का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

2) 16वीं-17वीं शताब्दी के दौरान भारत में उगाई जाने वाली नई फसलों और फलों पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

32.4 वस्त्र उद्योग तकनीकी

ऐच्छिक पाठ्यक्रम-03, खंड 6, इकाई-22 में आप वस्त्र निर्माण तकनीकों के बारे में थोड़ा बहुत जान चुके हैं। इसमें ओटाई, कताई, बुनाई, रंगाई, चित्रकारी और छपाई जैसी कई प्रक्रियाओं के बारे में बताया गया है। आप यह भी जानते हैं कि भारत में तकली का आगमन तुर्कों के साथ हुआ। वस्तुतः 17वीं शताब्दी के दौरान कोई आमूलकारी परिवर्तन या विकास नहीं हुआ। फिर भी इस काल में दो महत्वपूर्ण तकनीकी विकास के बारे में चर्चा की जा सकती है : पहला लाहौर, आगरा और फतेहपुर सीकरी में अकबर के संरक्षण में कालीनों की बुनाई और दूसरा बड़े पैमाने पर रेशम और रेशम के धागों का उत्पादन।

सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यूरोपवासी अपने साथ किसी भी प्रकार की वस्त्र निर्माण तकनीक नहीं लाए। वस्तुतः उनके पास इस काल में कोई बेहतर तकनीक थी भी नहीं। अंग्रेज़ी कम्पनी को रेशम रंगाई, बटाई और बुनाई के लिए बंगाल के कासिम बाजार की शरण लेनी पड़ती थी। 1770 ई. के दशक में भारत में इतालवी रेशम सूत्रण की शुरूआत हुई।

32.5 सैन्य तकनीकी

ऐच्छिक पाठ्यक्रम-03, खंड 6, इकाई 22.6 में आप भारत में तुर्कों द्वारा लाए गए घोड़े की जीन, नाल और बारूद के बारे में पढ़ चुके हैं। 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत के गुजरात, मालवा तथा दक्खन जैसे कुछ प्रदेशों में पहली बार आग्नेयास्त्रों का इस्तेमाल किया गया। परंतु इसका नियमित उपयोग पुर्तगालियों ने दक्षिण भारत में 1498 ई. से करना शुरू किया और उत्तर भारत में पहली बार बाबर ने 1526 ई. में इसका उपयोग किया। बाबर ने राजपूतों और अफगानों के विरुद्ध युद्धों में बंदूकों और तोपों का उपयोग किया।

चकमकी पत्थर की विधि

ये बंदूकें वस्तुतः तोड़ेदार बंदूकें (matchlock) थीं। यूरोप में बंदूक चलाने के लिए दो और विधियों का उपयोग किया जाता था। चक्र तकनीक (व्हील लॉक) (लगभग 1520 ई.) और चकमकी पत्थर की विधि (फ्लिंट लॉक) (लगभग 1620 ई.)। इसमें फलीते का उपयोग नहीं होता था। अबुल फजल बताता है कि अकबर की आयुधशाला में तोड़ेदार विधि के बिना ही छोटी बंदूक का निर्माण किया जाता था परंतु वह किसी अन्य वैकल्पिक विधि का उल्लेख नहीं करता है। यहां शायद फ्लिंट लॉक या चकमकी पत्थर की विधि का उपयोग किया जाता होगा क्योंकि यूरोप में भी चक्र तकनीक या व्हील लॉक का इस्तेमाल पिस्तौल के लिए हुआ करता था। परंतु इन छोटी बंदूकों (चकमक बंदूकों) का उत्पादन सीमित पैमाने पर होता था। बहुत संभव है कि अकबर अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिए ऐसी बंदूकें बनवाया करता हो क्योंकि सत्रहवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में उत्तर भारत में भारतीय इस तकनीक से कम ही परिचित थे। वस्तुतः औरंगजेब के समय तक के चित्रों में तोड़ेदार बंदूकों का ही चित्रण मिलता है।

1609 ई. में ही बुरहानपुर में यूरोप में बनी पिस्तौलों की बिक्री की जाती थी। कभी-कभी यूरोपवासी भारतवासियों को पिस्तौल भेंट के रूप में दिया करते थे। परंतु भारतीय चक्र तकनीक की कला नहीं सीख पाए। भारत में भारतीय शासकों के लिए विभिन्न आकारों की तोपें बनाई जाती थीं।

यहां हमें आक्रमण और बचाव के लिए उपयोग में आने वाले परम्परागत अस्त्रों जैसे तलवार, भाला, छुरा, तीर, धनुष, ढाल आदि का विवरण प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है। यह रोचक तथ्य है कि आमतौर पर भारतीय वक्राकार तलवार रखते थे जबकि इसके विपरीत यूरोप में दोहरी धार वाली सीधी तलवार का प्रचलन था। बाद में सत्रहवीं शताब्दी में मराठा यूरोपीय शैली की तलवार रखने लगे।

मध्यकालीन तलवारें

बंदूक को साफ करने की प्राविधि का जिक्र करते हुए अबुल फजल लिखता है
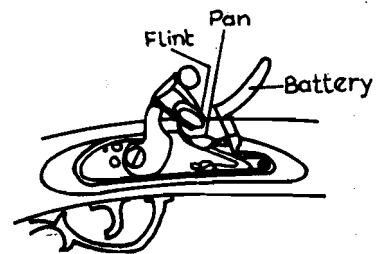
तोपों का प्रयोग : चित्तौड़ की घेराबंदी

"आरंभ में एक शक्तिशाली व्यक्ति लोहे के औजार से बड़े परिश्रमपूर्वक बंदूक की नाल को साफ करता था। महामहिम (अकबर) ने अपने अनुभव के आधार पर एक पहिए का आविष्कार किया जिससे काफी कम समय में बंदूक की सोलह नालें साफ की जा सकती थीं। इस पहिए को बैलों की सहायता से घुमाया जाता था।"

एक अन्य स्थल पर अबुल फ़जल ने लिखा है कि अकबर ने एक ऐसी यांत्रिकी विकसित की थी जिसकी सहायता से एक घोड़ा दबाने से ही एक साथ सत्रह बंदूकों से गोली दागी जा सकती थी।

32.6 जहाज निर्माण

मध्यकालीन युग में सभी जगह जहाज का निर्माण लकड़ी से किया जाता था। तख्तों को जोड़ने के लिए कई उपाय किए जाते थे। भारत में इसके लिए चूल बैठाने की प्रथा थी। यह मूलतः पटरा और खांचा सिद्धांत पर आधारित थी – एक पटरे को दूसरे पटरे के खांचे से जोड़ दिया जाता था। इसके बाद तख्तों को एक स्वदेशी लेप और चूने से जमाया जाता था जिससे कि छिद्रों को भरा जा सके और समुद्री कीड़ों से भी लकड़ी के तख्तों का बचाव किया जा सके। तख्तों को जोड़ने के लिए मछली के तेल का भी प्रयोग होता था। भारतीयों ने यूरोपवासियों के टांकने की विधि (कीलों द्वारा तख्तों को जोड़ने की विधि) नहीं अपनाई, तख्तों को जोड़ने या उन्हें किसी प्रकार के रिसाव से बचाने के लिए पुराने सन के रेशे या पुरानी रस्सी के टुकड़े में लेप मिलाकर उसे जोड़ों, छिद्रों और ठीक से न जुड़ने वाले हिस्सों में भर दिया जाता था। इस तकनीक का भारतीयों द्वारा न अपनाए जाने का एक महत्वपूर्ण कारण यह था कि यह भारतीयों की स्वदेशी तकनीक की अपेक्षा कोई बेहतर नहीं थी। इसके अतिरिक्त टांकने की विधि भारतीय विधि से काफी खर्चीली भी थी।

यूरोपवासियों के आने से पहले जहाजों और नावों के तख्तों को नारियल की बनी रस्सी अथवा कभी-कभी लकड़ी की कीलों से जोड़ा जाता था। यूरोपवासी अपने जहाजों को मजबूत और टिकाऊ बनाने के लिए लोहे की कीलों और शिकंजों का इस्तेमाल करते थे। भारतवासियों ने

इन नई तकनीकों को शीघ्रता से अपना लिया। 1510 ई. के आसपास वार्थेमा ने कालिकट में खड़े भारतीय जहाजों में "लोहे की कीलों का जमकर उपयोग" देखा था। अबुल फजल (1593-94 ई.) बताता है कि अकबर के एक जहाज को बनाने के लिए 468 मन लोहे का इस्तेमाल होता था। मुगल कालीन कुछ चित्रों में जहाजों के निर्माण में लोहे की कीलों, पत्तियों और शिकंजों का उपयोग दर्शाया गया है।

इसी प्रकार सत्रहवीं शताब्दी के दौरान यूरोप में बने लोहे के लंगरों (anchor) का उपयोग किया जाने लगा। इसके पहले लंगरों के लिए बड़े पत्थरों का उपयोग किया जाता था।
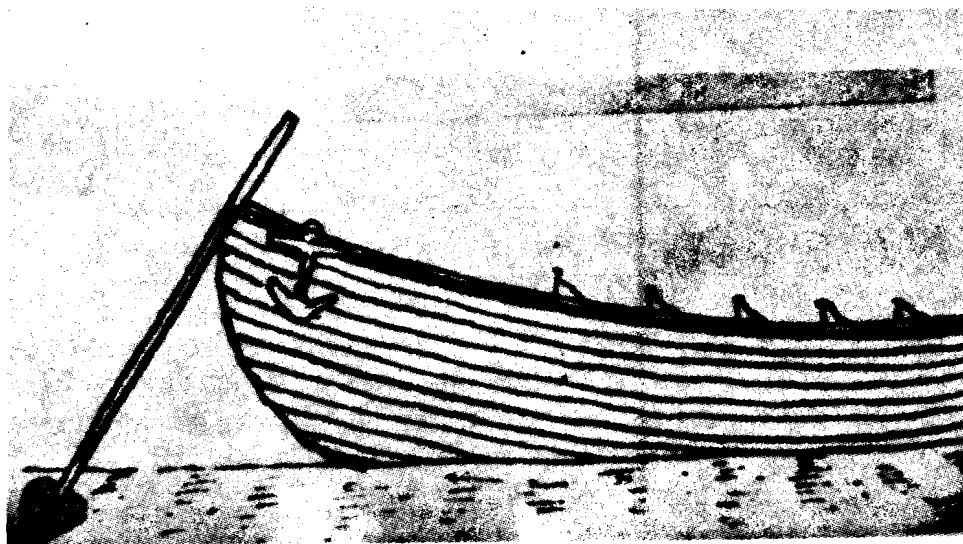
लोहे का लंगर

जहाज से पानी निकालने के लिए भारतीय बाल्टी का उपयोग करते थे। हालांकि सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोपवासियों द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले लोहे के चेन पंप का उपयोग भी भारतीय कमोबेश करने लगे। पर इनका निर्माण भारत में नहीं होता था : वे या तो यूरोपवासियों से खरीदे जाते थे या उधार लिए जाते थे।

पानी निकालने के लिए बाल्टियों का प्रयोग

बोध प्रश्न 2

1) 16वीं-17वीं शताब्दियों के दौरान बंदूको में किस यांत्रिक विधि का प्रयोग होता था।

....

....

....

....

....

2) चूल बैठाने और टांकने की विधि से आप क्या समझते हैं? भारतीयों ने टांकने की विधि को वरीयता क्यों नहीं दी और उन्होंने उसे क्यों नहीं अपनाया?

....

....

....

32.7 धातुशोधन तकनीकी

हम नीचे भारत में मौजूद धातुशोधन की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करने जा रहे हैं :

i) धातु गलाने के लिए लकड़ी के कोयलों (पत्थर के कोयले की जानकारी नहीं थी) का ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। अतः धातु गलाने का काम वहीं किया जाता था जहां लकड़ी की आपूर्ति आसान होती थी।

ii) धातु गलाने वाले छोटी भट्टियों का उपयोग करते थे जिसमें संभवतः उच्च ताप सहनेवाली मिट्टी नहीं होती थी।

iii) धौंकनी बिना धारियों (पट्टियों) की तथा छोटी होती थी जिससे ज्यादा हवा नहीं फूंकी जा सकती थी, इसलिए इससे धातु को गलाने के लिए भट्टी में आवश्यक ताप पैदा करने की ताकत नहीं होती थी।

iv) लोहे और तांबे को गलाने के लिए कई भट्टियों (कभी-कभी आठ) का उपयोग किया जाता था जहां से उसे साँचों में ले जाया जाता था। सभी भट्टियों में धातु एक समान नहीं गल पाती थी अतः इनके मिलने से बनी हुई वस्तु हमेशा उच्च कोटि की नहीं होती थी।

अबुल फजल ने अकबर की आयुधशाला में लोहे की तोपों और छोटी बंदूकों की नाल बनाने की तकनीक का उल्लेख किया है। संभवतः इन नई तकनीकों का आविष्कार किया गया था। इस बात की जानकारी नहीं है कि बाद में इनमें सुधार किया गया या नहीं। तोपों के निर्माण में तांबा, पीतल और लोहे का उपयोग होता था।

भारत में जस्ता (zinc) संबंधी धातु शोधन तकनीक की शुरुआत बारहवीं शताब्दी के आसपास हुई। अबुल फजल जस्ता उत्पादन के लिए राजस्थान के जावर क्षेत्र का वर्णन करता है। जावर के निकट किए गए उत्खनन में जस्ता आसवन के लिए उपयोग में लाए जाने वाले साँचे पाए गए हैं।

राजस्थान में खेतरी में तांबे की खाने थीं। टीन का उत्पादन भारत में सामान्यतः नहीं होता था : इसे अन्य एशियाई क्षेत्रों से आयातित किया जाता था। कांसे का उपयोग सिंधु घाटी सभ्यता के काल से ही होता रहा है। पीतल जैसी मिश्रित धातु (तांबा और जस्ता या टीन) भी भारत में तैयार की जाती थी।

इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि भारत में और खासकर आंध्रप्रदेश में लगभग 400 ई.पू. से ही असली "**वूट्ज**" (wootz) लोहे का उत्पादन होता था। संभवतः "**वूट्ज़**" शब्द तेलुगु शब्द "**उक्कू**" का बिगड़ा हुआ रूप है। इसे सीरिया तक निर्यात किया जाता था। वहाँ डैमस्कस में इससे तलवार बनाई जाती थी (जो डैमेस्कीन तलवार के नाम से प्रसिद्ध थी)।
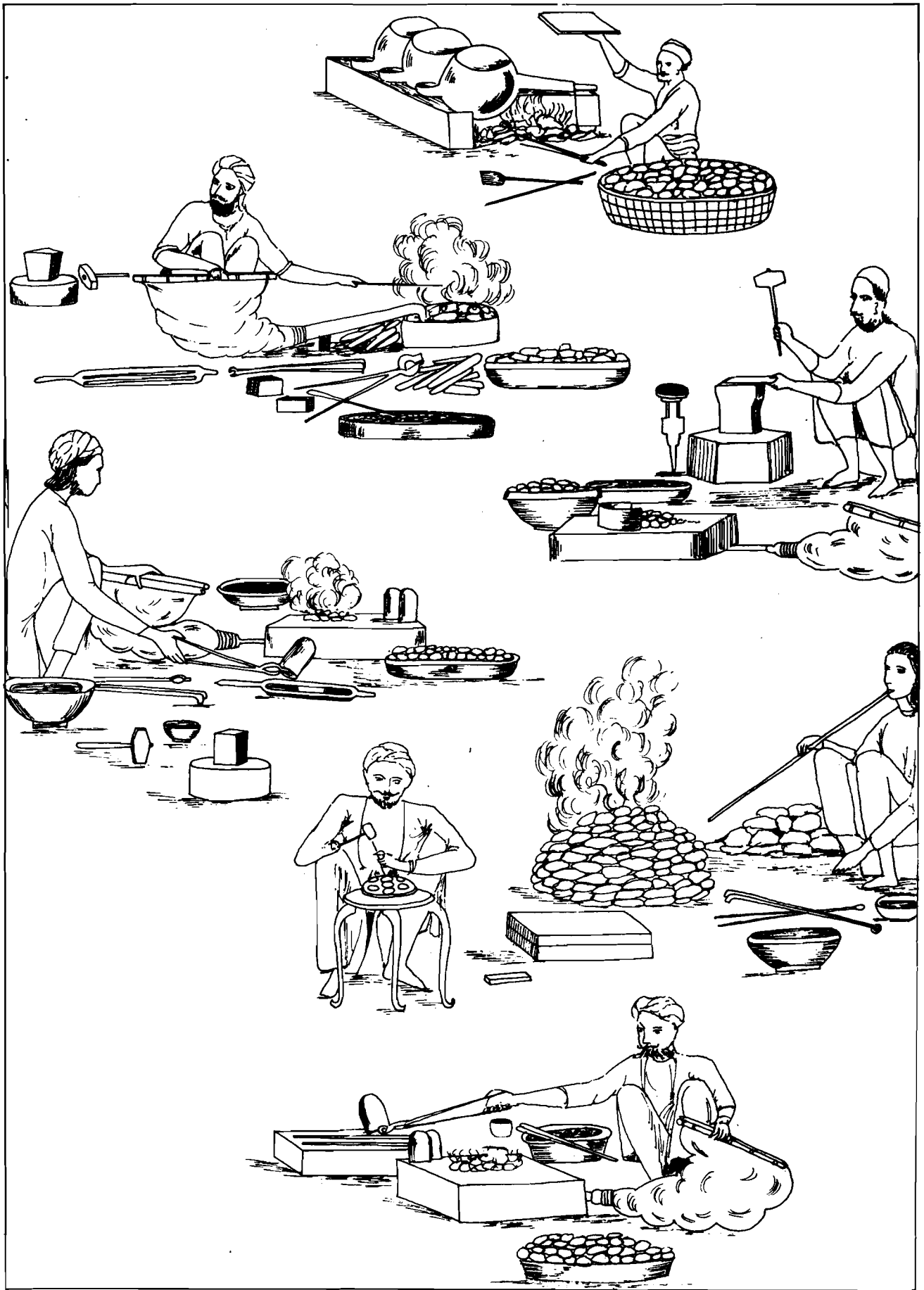
धातु शोधन : धातु को गलाने की विधि; लकड़ी के कोयले का प्रयोग; भट्टी; धौंकनी (आइन-ए अकबरी, अनु. ब्लॉकमैन)

32.8 काँच निर्माण तकनीकी

काँच एक जटिल कृत्रिम औद्योगिक पदार्थ है। यह क्रिस्टल काँच (crystal), स्फटिक (quartz), लावा काँच, और पोर्सलिन या चीनी मिट्टी से भिन्न होता है। एम.जी. दीक्षित (**हिस्ट्री ऑफ ग्लास**) ने बताया है कि काँच की भारत में कमी नहीं थी परंतु उन्होंने यह भी माना है कि भारतीय काँच पदार्थों में "मनके या चूड़ियों" जैसी छोटी-छोटी चीजें ही बनाई जाती थीं।

मुसलमानों के आगमन के बाद दवा की शीशी, जार और शीशे के पात्र इस्लामी देशों से भारत आने लगे परंतु भारतीयों ने इनका स्वयं निर्माण शुरू नहीं किया।

16वीं-17वीं शताब्दी के दौरान यूरोपवासी अपने साथ काँच के बने कई तरह के सामान लाए। ये सब हमारे लिए नए थे : जैसे काँच का दर्पण। हम भारतीय केवल धातुओं (तांबा और कांसा) के दर्पण से परिचित थे परंतु काँच का दर्पण हमारे यहां उपलब्ध नहीं था। इसके अलावा वे काँच के बने चश्मे और लैंस भी अपने साथ लाए। यूरोपवासियों ने ये वस्तुएं भारतवासियों को बतौर भेंट दी और कभी-कभी वे इसे बेचा भी करते थे। परंतु इनका बाजार काफी सीमित था। इसी प्रकार विवेच्य काल में भारतीय यूरोप में बनी काँच की वस्तुओं का उपयोग करने लगे परंतु उन्होंने उसका निर्माण शुरू नहीं किया।

आयताकार दर्पण

चश्मे का प्रयोग

ऐसा प्रतीत होता है कि 15वीं शताब्दी के दौरान भारतीयों को रेत घड़ी (sand glass) बनाने की तकनीक ज्ञात थी, परंतु मुगल कालीन चित्रों में यूरोप में निर्मित रेत घड़ी को ही दर्शाया गया है जिसे यूरोपवासी अपने साथ भारत लेकर आए थे। भारत में इसे निर्मित किए जाने की सूचना 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से मिलती है।

इसके अतिरिक्त हमें यूरोप में निर्मित पानी पीने के ग्लास, आवर्धक या ज्वलंत ग्लास और अग्रवर्ती ग्लास (टेलीस्कोप) की भी जानकारी मिलती है। यह टेलीस्कोप कांच के लैंसों से बनती थी अतः सत्रहवीं शताब्दी में भारत में इसके बनने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

32.9 मुद्रणालय

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि भारत और चीन के बीच इतने आदान-प्रदान के बावजूद चीन के लकड़ी के ठप्पों (ब्लाक) से छपाई की तकनीक के संबंध में भारतवासियों ने जरा-सी भी रुचि नहीं दिखाई। पुर्तगाली 1550 ई. के आसपास यूरोप में बने धातु की टाइप अपने साथ गोवा तक लेकर आए। यहां उन्होंने ईसाई संतों के उपदेशों, मराठी और कोंकणी भाषाओं और बोलियों की व्याकरण और शब्दावली छापनी शुरू की। परंतु इसके लिए उन्होंने देवनागरी लिपि के स्थान पर रोमन लिपि अपनाई।

सम्राट जहांगीर ने जैसुइट सम्प्रदाय के ईसाइयों को कहा था कि फारसी या अरबी लिपि में टाइप नहीं ढ़ाले जा सकते, इसके जवाब में उसने तुरंत 1591 ई. में वैटिकन में छपे ईसोपदेश की अरबी प्रति दिखा दी। लेकिन इसके बाद जहांगीर ने कभी इसमें रुचि नहीं प्रदर्शित की।

1670 ई. के दशक में सूरत स्थित इंग्लिश कम्पनी के मुख्य दलाल भीमजी पारक ने इस तकनीक में गहरी रुचि दिखाई। भीमजी के निवेदन और खर्चे पर एक प्रेस और छपाई मशीन 1674 ई. में भारत आई। भीमजी ने भारतीय (banian) तरीके की टाइप बनवाने की कोशिश की परंतु इंग्लिश छपाई कारीगर को टाईप काटने और ढालने की जानकारी नहीं थी, अतः ऐसा संभव नहीं हो पाया। भीमजी की सहायता करने के लिए इंगलैंड से टाइप काटने वाला कारीगर नहीं उपलब्ध कराया गया था। इसके बावजूद भीमजी अपने सपने को साकार करने और देवनागरी लिपि का टाइप बनवाने के प्रयासों में जुटा रहा। उसने अपने कर्मचारियों को इस कार्य में लगाया। वे सब भारतीय थे। सूरत स्थित अंग्रेज़ कारखानेदार बताते हैं कि 1667/77 ई. के दौरान "हमने मोढी (bania) प्रकृति के कुछ छपे कागज देखे जिसे भीमजी के आदमियों ने तैयार किया था जो बहुत ही स्पष्ट, सुपाठ्य और सुंदर था।" परंतु शीघ्र ही भीमजी की हिम्मत टूट गई और उसने यह कार्य बीच में ही छोड़ दिया।

बोध प्रश्न 2

1) 17वीं शताब्दी के दौरान यूरोपवासियों द्वारा भारत लाई गयी काँच की बनी मुख्य वस्तुओं के नाम बताइए।

....
....
....
....
....

2) भीम जी पारक द्वारा देवनागरी लिपि में छापाखाना स्थापित करने के प्रयत्न पर टिप्पणी लिखिए।

....
....
....
....
....

32.10 समय मापन पद्धतियाँ

घड़ी विज्ञान के इतिहास से विभिन्न देशों में मानवजाति द्वारा समय ज्ञात करने के लिए अपनाए गए विभिन्न तरीकों का पता चलता है। समय ज्ञात करने की इन विधियों में धूप घड़ी, जल घड़ी, रेत घड़ी और यांत्रिक घड़ियां उल्लेखनीय हैं।
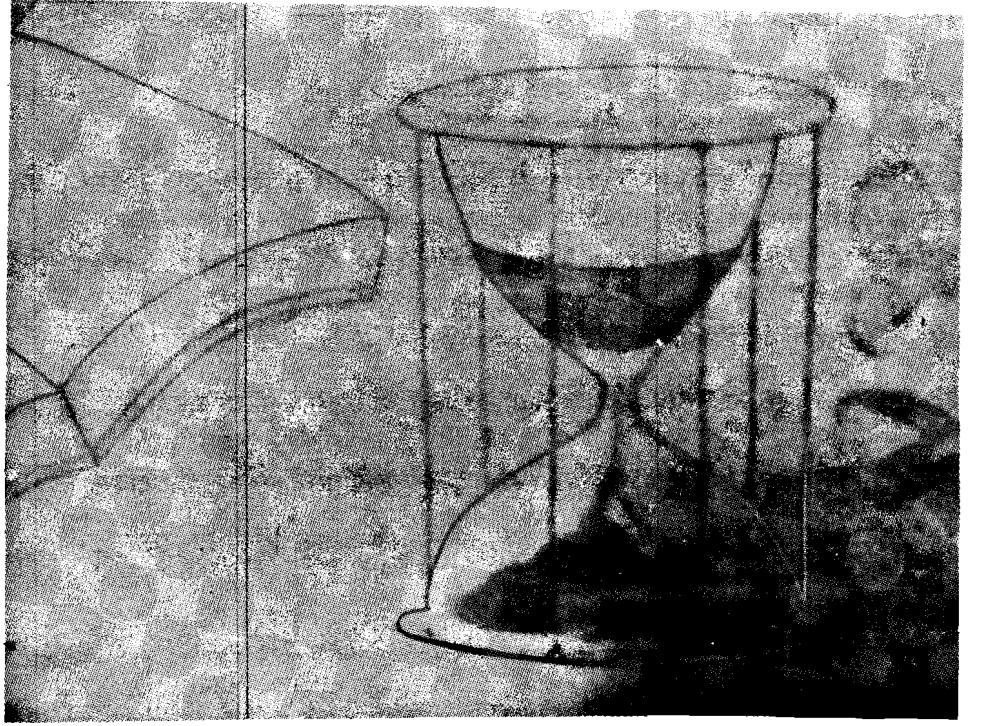
बालू की घड़ी

सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के दौरान भारत के शहरों में समय पता करने के लिए जल घड़ी (डूबने वाला कटोरा) का उपयोग काफी किया जाता था। इसे फारसी में **तास** और इस पूरी यांत्रिकी (कटोरा तथा मुद्‌गर) को **तास घड़ियाल** कहते थे। पानी में डुबा हुआ कटोरा समय बताता था और घंटे पर मुद्‌गर से प्रहार करके समय की घोषणा होती थी। इसे **घड़ियाल** कहते थे। अफीफ की **तारीख-ए फिरोज शाही** में दिल्ली सल्तनत के काल में जल घड़ी का उल्लेख मिलता है। उसके अनुसार चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फिरोजाबाद में सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ने **तास घड़ियाल** लगवाया था। बाबर ने भी **बाबरनामा** में इसका उल्लेख किया है। अबुल फजल ने भी विस्तार के साथ इसका उल्लेख किया है।

मुगलों से काफी पहले यूरोपवासियों ने यांत्रिक घड़ी की आधारभूत यांत्रिकी विकसित कर ली थी जिसमें वजन से घूमने वाली सुई और "एस्केप" या निर्गम पद्धति का उपयोग होता था। यूरोपवासी अक्सर इस प्रकार की घड़ियाँ भारतवासियों, खासकर संभ्रांत वर्ग, को भेंट में दिया करते थे। (सर टामस रो ने जहांगीर को एक ऐसी ही घड़ी भेंट की थी परंतु सम्राट ने अपने संस्मरण में उसका उल्लेख तक नहीं किया है।) आगरा स्थित जेसुइट चर्च में एक बड़ी दीवार घड़ी थी जिसके घंटे की "आवाज शहर के हर हिस्से में सुनाई देती थी"। काफी लंबे समय से भारतवासी यूरोप में बनी इन घड़ियों से परिचित थे परंतु इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता है कि भारतवासियों के किसी सामाजिक समूह ने इसे अपनाने की कोशिश की हो। ये उनके लिए मात्र "खिलौने" थे, और साधारण रूप में या "राजनयिक" रूप से प्राप्त भेंट के रूप में लिए जाते थे। यूरोप की इस घड़ी को भारतवासी इस कारण से स्वीकार नहीं कर सके क्योंकि दोनों स्थानों पर समय की अवधारणा में अंतर था। यूरोपीय अवधारणा के अनुसार

12 घंटे का दिन और 12 घंटे की रात होती थी जबकि भारत में एक दिन आठ **पहरों** में विभाजित था। दिन में सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक चार और पुनः सूर्यास्त और सूर्योदय तक चार **पहर** होते थे। प्रत्येक **पहर घड़ियों** में विभक्त होता था, एक **घड़ी** में 24 मिनट होते थे। इस प्रकार भारतीय पद्धति में पूरे दिन में 24 मिनट के 60 "घंटे" होते थे और यूरोपीय पद्धति में 60 मिनट के 24 घंटे होते थे।

32.11 विविधा

i) भारत में वैज्ञानिक तरीके से बनी मेहराबें, गुम्बद और चूना-गारा, आदि का उपयोग तुर्क शासक पहले ही कर चुके थे (पढ़िए ऐच्छिक पाठ्यक्रम-03, खंड 6, इकाई 22)। सत्रहवीं शताब्दी में भवन निर्माण की दिशा में कोई महत्वपूर्ण नवीन प्रगति नहीं हुई। परंतु इस काल में भवन का "नक्शा" बनाने की प्रथा चल पड़ी थी। इसे फारसी में **तरह (खाका)** कहते थे जिसमें एक आरेख पत्र पर भवन का खाका खींच लिया जाता था। यह भी ध्यान देने की बात है कि भारतीय भवनों में यूरोपीय भवनों की तरह खिड़की, चौखट और चिमनी नहीं होती थीं।

ii) भारतवासी यूरोपवासियों के समान शोरा को परिशुद्ध करने के लिए धातु (तांबा) के वाष्प पात्र का उपयोग नहीं करते थे। वे मिट्टी के पात्रों का उपयोग करते थे।

iii) व्यापार के लिए माल को ढोने के लिए बैलगाड़ी का आमतौर पर प्रयोग होता था। घोड़ा गाड़ी का प्रयोग काफी कम था। मुख्यतः इसे सवारी के लिए ही प्रयोग किया जाता था। आमतौर पर उससे सामान नहीं ढोया जाता था। सर टामस रो ने जहांगीर को चार घोड़ों से खींची जानेवाली अंग्रेज़ी बग्घी उपहार स्वरूप प्रदान की थी। सम्राट ने इस पर सवारी भी की थी (उन्होंने इसे **रथ फिरंगी** कहा था)। सत्ताधारी वर्ग ने भारतीय बढ़इयों से इस नमूने की बग्घियां बनवाईं। परंतु यह रुझान अल्प समय तक ही जीवित रहा। सत्रहवीं शताब्दी में इसमें कोई विकास नहीं हुआ।

घोड़ा गाड़ी

iv) जहांगीर के शासनकाल के नौवें वर्ष में रसायन संबंधी एक खोज की गई थी। यह गुलाब का इत्र था जिसे **इत्र जहांगीर** के नाम से जाना जाता था। अपने संस्मरण **(तुजुक-ए जहांगीरी)** में सम्राट ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है :

> "इस इत्र की खोज मेरे शासनकाल में नूरजहां बेगम की मां द्वारा की गई थी। जब वे गुलाबजल बना रही थीं तो जग से गर्म गुलाब जल पात्र में डाला। इससे पात्र की तली में एक प्रकार का झाग (चर्बी) जमा हो गया। उन्होंने धीरे-धीरे इस झाग को इकट्ठा किया। काफी गुलाबजल से थोड़ा-सा झाग प्राप्त हुआ। इसके समान उच्च कोटि का दूसरा कोई इत्र नहीं है। उनकी इस खोज पर बतौर उपहार मैंने आविष्कारकर्ता को मोतियों का हार प्रदान किया। सलीमा सुल्तान बेगम ने इस तेल **(रोगन)** को **इत्र जहांगीर** का नाम दिया।"

v) पानी को ठंडा करने के लिए शोरे का उपयोग एक अन्य महत्वपूर्ण रासायनिक आविष्कार था। अबुल फजल बताता है कि वही शोरा जो बारूद में आगे पैदा करता है उससे पानी को ठंडा भी किया जा सकता है। उसने विस्तार से शोरे से पानी ठंडा करने की विधि का विवरण भी प्रस्तुत किया है।

vi) यह बताया जाता है कि सम्राट अकबर ने एक बैलगाड़ी विकसित की थी जो यात्रा करने और सामान ढोने के साथ-साथ अनाज भी पीसती थी। भारत में मुगलकाल के दौरान इस कार्य के लिए पन चक्की का इस्तेमाल बहुत कम ही होता था। मुगल कालीन एक चित्र (1600 ई.) जो भारत के बाहर की एक कथा पर आधारित है एक अधोजल चालित पन चक्की दर्शाता है। यहां तक कि अनाज पीसने के लिए पवन चक्की **(आसिया-ए बाद)** का इस्तेमाल भी कम होता था, ऐसी एक पवन चक्की अहमदाबाद में लगाई गई थी जिसके अवशेष अभी भी देखे जा सकते हैं। आमतौर पर हाथ की चक्की का प्रयोग किया जाता था। इसमें दो पत्थरों के बीच अनाज को पीसा जाता था। यह एक पुरानी प्रथा थी।

बोध प्रश्न 4

1) भारतवासियों ने यूरोपीय समय मापने की पद्धति क्यों नहीं अपनाई?

....

....

....

....

....

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति करो :

i) **इत्र जहांगीर** का आविष्कार .... ने किया

ii) शोरा का उपयोग .... के लिए ह..ा था।

iii) भारतीय घरों में .... और .... नहीं होती थी।

iv) भारतीय शोरा को परिशुद्ध करने के लिए .... का बना वाष्प पात्र उपयोग में लाते थे।

32.12 सारांश

इस इकाई में आपने मुगल शासन के दौरान भारत में विज्ञान और तकनीकी के विभिन्न आयामों की जानकारी प्राप्त की। सम्पूर्ण विषयवस्तु को दो स्तरों पर परखा गया : क) स्वदेशी विकास, और ख) यूरोपीय विज्ञान और तकनीक के प्रति भारतीय रुझान।

इस काल में विज्ञान के क्षेत्र में भारतीयों का कोई उल्लेखनीय योगदान नहीं रहा। जहां तक तकनीकी का प्रश्न है खासकर सैन्य क्षेत्र में कुछ नये आविष्कार हुए और नए तरीके अपनाए गये। रासायनिक क्षेत्र में, गुलाब का इत्र और पानी ठंडा करने के लिए शोरा का उपयोग नयी उपलब्धियां थीं।

इस इकाई में यूरोपीय विज्ञान और तकनीक से भारतवासियों के परिचय पर भी प्रकाश डाला गया है। परंतु सभी क्षेत्रों में भारतीयों का रुझान एक जैसा नहीं था। जैसे जहाज निर्माण के क्षेत्र में तो भारतीयों का सकारात्मक रवैया सामने आया परंतु काँच तकनीकी के क्षेत्र में यह बात देखने को नहीं मिलती है। कई कारणों से विभिन्न तकनीकों के प्रति भारतवासियों का रवैया सकारात्मक, नकारात्मक और उदासीन रहा। जहां तक विज्ञान का संबंध है भारतवासियों ने यूरोप के अनुभव से लाभ नहीं उठाया।

32.13 शब्दावली

चक्र पद्धति/तकनीक : बंदूक में प्रयुक्त वह तकनीक जिसमें बंदूक चलाने के लिए लोहे के टुकड़े द्वारा चक्र को घुमाकर चिंगारी जलाई जाती थी जिससे गोली चलाई जाती थी।

चकमक पत्थर तकनीक : सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी में गोली चलाने के लिए आवश्यक चिंगारी के लिये चकमक पत्थर का प्रयोग किया जाता था।

वूट्ज़ (wootz) : कन्नड उक्कू लोहा, यह लोहा बनाने की अत्यधिक प्राचीन भारतीय विधि है।

32.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 32.3 "खुरपी से बोने" की विधि बताइए। यह भी वर्णन कीजिए कि यह बीज बोने की नयी तकनीक थी।
2) देखिए भाग 32.3 नई फसलों और फलों के नाम लिखिए। यह भी बताइए कि यह कब और किसके द्वारा भारत लाए गए।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 32.5 बताइए कि मुख्य रूप से तोड़ेदार बंदूकों का इस्तेमाल होता था। यह भी वर्णित कीजिए कि व्हील और फ्लिंट लॉक (चक्र और चकमक प्रविधि) का भी इस्तेमाल होता था। परंतु इनका उपयोग सीमित पैमाने पर होता था।
2) देखिए भाग 32.6 दोनों तकनीकों पर प्रकाश डालिए। बताइए कि टाँकने की विधि चूल बैठाने की विधि से ज्यादा महंगी थी। अतः भारतवासियों ने इसे अपनाने में उत्सुकता नहीं दिखाई।

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 32.8
2) देखिए भाग 32.9 भीमजी ने अपना कारखाना स्थापित किया और उसको एक हद तक सफलता भी मिल गई थी परंतु उसने यह कार्य बीच में ही छोड़ दिया।

बोध प्रश्न 4

1) देखिए भाग 32.10 बताइए कि भारतवासी यूरोप की यांत्रिक घड़ी से परिचित थे परंतु

भारतवासियों की समय मापन पद्धति उनसे अलग थी।

2) i) सलीमा सुल्तान बेगम
ii) पानी ठंडा करने के लिए
iii) खिड़की के शीशे, चौखट, चिमनी
iv) मिट्टी